Shabdarnav : *An International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research* | **ISSN - 2395-5104**
वर्ष–9, अंक–18, भाग–1, जुलाई–दिसम्बर, 2023 | **Impact Factor : 7.001**

नाट्यशास्त्र की रसविषयक अवधारणा

अतुल कुमार मिश्र*

रस सिद्धान्त भारतीय साहित्य वाङ्मय में प्रमुख स्थान रखता है। रस का सम्बन्ध काव्य सृजन से लेकर आस्वाद तक की पूर्ण प्रक्रिया के रूप में विकसित हुआ, प्रारम्भ में रस मुख्यत: विषयगत था, किन्तु भरत का नाट्यरस अभिनवगुप्त से सहृदय रस के रूप में पर्यवसित हुआ। रस निष्पत्ति के व्याख्या क्रम में साधारणीकरण व्यापार और व्यंजना व्यापार अथवा ध्वनि जैसे दो महत्वपूर्ण अवधारणओं की सृष्टि हुई। मनोवैज्ञानिक स्तर पर जो रस आरम्भ में लौकिक सुख दुखात्मक भावों के रूप में निरूपित हुआ, आधुनिक युग के विचारकों ने अपनी इस मूल्यवान विरासत को युग की आवश्यकताओं के अनुरूप यथासम्भव विकसित करने का प्रयास किया, जिससे अनेक व्याख्याएँ उपलब्ध होती है। इस रस विषयक सिद्धांत के कारण संपूर्ण काव्यशास्त्र अथवा साहित्यशास्त्र भरत मुनि के ऋणी है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में नाट्यशास्त्र का केवल शास्त्र के रूप में ही चर्चा नहीं किया, अपितु यह कला विश्वकोष के रूप में प्रदर्शित किया गया है। नाट्यशास्त्र की रचना भरत मुनि ने की है। नाट्यशास्त्र में भारतीय ज्ञान परम्परा के समस्त तत्व निहित है। नाट्यशास्त्र की परम्परा में भरत ने कई महनीय आचार्यों का उल्लेख किया है। भरत मुनि ने भगवान ब्रह्मा के आदेश के उपरान्त नाट्यशास्त्र की रचना तथा उनका प्रयोग अपने पुत्र शिष्यों की सहायता से किया। इसका उल्लेख नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र से भारतीय ज्ञान विधा का कोई भी तत्व अछूता नहीं रहा है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने ऐसा कहा है कि इसमें कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग अथवा कर्म नहीं है जो इस नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है[1]। भरत मुनि के द्वारा निर्मित इस शास्त्र में ज्ञान की समस्त विधा वर्णित होने के कारण यह प्रसिद्ध उक्ति **'यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'** पूर्णतया चरितार्थ होती है। नाट्यशास्त्र में जितना पूर्ण एवं सांगोपांग नाट्यतत्वों (वस्तुत: कला के समस्त तत्त्वों) का विवेचन प्राप्त होता है, उतना विश्व के किसी साहित्य में ऐसा अद्भुत समागम प्राप्त नहीं होता है। इसी के आधार पर विद्वान इस नाट्यशास्त्र को विश्वकोष की श्रेणी में कहते हैं। नाट्यशास्त्र की रचना के संदर्भ में भरत मुनि ने कहा है कि उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य सामग्री, सामवेद से गीत (संगीत) सामग्री, यजुर्वेद से अभिनय सामग्री तथा अथर्वेद से रस सामग्री का ग्रहण किया है।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयात् रसानथर्वणादपि[2]॥

इन प्रमुख तत्वों का वेद से ग्रहण होने के कारण ही नाट्यशास्त्र को पंचम वेद के रूप में भी जानते हैं। नाट्यशास्त्र में वर्णित अनेक विषयों में से रस सिद्धांत अत्यंत प्रसिद्ध सिद्धांत है।

नाट्यशास्त्र के विविध प्रतिपाद्यों में रस का स्थान अन्यतम है। भरत मुनि ने नाट्य के अनेक लक्षण प्रतिपादित किए है, तथा छठे अध्याय में नाट्य को रस रूप में भी बताया है[3]। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस विषयिणी चर्चा करते हुए दश (10) संग्रह[4] निर्देशित किया है, उसमें सर्वप्रथम रस की ही गणना किया गया है। भरत मुनि की एक अपनी विशिष्ट भाष्यात्मक शैली है। रससूत्र के कथन के पूर्व रस का माहात्म्य/प्रयोजन प्रतिपादित करते हुए कहते है कि रस के बिना विभावादि अर्थों में बुद्धि कथमपि प्रवृत्त नहीं होती है, व्युत्पत्तिवान् व्यक्ति पार्यन्तिक रसात्मक प्रयोजन के लिए ही प्रवृत्त होता है[5]। रस के स्थायिभाव रति आदि का कारण विभाव, कार्य अनुभाव और सहकारी कारण व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरतमुनि ने रस क्या है? रस शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? इस संबंध में **'रस्यते इति रस:'** व्युत्पत्ति किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि रस आस्वादन की विषय-वस्तु है। भरत मुनि ने रस की परिभाषा के लिए आक्षेप-प्रश्न उठाया और उसका स्वयं समाधान भी किया- **'अत्राह– रस इति क: पदार्थ:। उच्यते- आस्वाद्यत्वात्'**[6] भरतमुनि ने कहा कि रस इसलिए रस है क्योंकि उसका आस्वादन किया जाता है अथवा वह आस्वादन योग्य होने से रस होता है। इसके अनन्तर यह स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि किसका आस्वादन किया जाता है? भरतमुनि ने इसका उत्तर इस प्रकार से दिया की जैसे अनेक प्रकार के व्यंजनों/औषधियों से युक्त भक्ष्य/पेय पदार्थ को खाकर/पीकर व्यक्ति के द्वारा रसास्वादन किया जाता है, तथा आनंद की अनुभूति प्राप्त किया है। जबकि यह लौकिक रस है, इसका भी कुशल निर्माता और वस्तुत: रस आस्वादन की योग्यताधारक व्यक्ति के द्वारा रसनीय है। उसी प्रकार से

*असिस्टेन्ट् प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, अमोडी (चम्पावत)

Scanned with OKEN Scanner

अनेक प्रकार की भावों का आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य, इन चतुर्विध अभिनय के द्वारा स्थायी भाव का अभिव्यंजन रस को उत्पन्न करता है, जिससे भाविक/सामाजिक आनंद को प्राप्त करता है[7]। भरतमुनि ने जो यह दृष्टांत दिया है उस पर ध्यान देना आवश्यक इस लिये है कि सामाजिक अथवा दर्शक की दृष्टि से व्यंजनों या भावों का भोग रस नहीं है अपितु भोग से उत्पन्न होने वाला आनंद ही रस है। भावविद् व्यक्ति के विषय में भोजन की क्रिया से पृथक भोजनोपरांत उसका अनुभव अथवा चर्वणा से आनंद प्राप्त होता है। उसी प्रकार नाटक के दर्शक के विषय में नाटक दर्शन की क्रिया से उसके भावों के आस्वादन कार्य से रसानुभूति भिन्न है। इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सामाजिक की भावानुभूति के आस्वादन से उत्पन्न आनंद ही रस कहा जा सकता है। वस्तुत: रस केवल मनोवेग नहीं है, और ना केवल उसका आस्वादन मात्र ही है, अपितु रस इन सबसे भिन्न कोई अलौकिक विषय है। लोक में इसकी प्रसिद्धि रसनात्मक व्यापार से होने के कारण उपचार वृत्ति के माध्यम से रस कहा जाता है। उसके आस्वादन से उत्पन्न आनंद रस है। पुन: जिज्ञासा यह भी होती है की इस आनंद का भोक्ता कौन है? भरत मुनि ने इसका भी उत्तर इस प्रकार दिया है कि **'सुमनस: प्रेक्षका: हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति[8]"** अर्थात् सहृदय दर्शक अथवा सामाजिक ही भावों का आस्वादन करते है, तथा अलौकिक हर्ष/प्रीति को प्राप्त करते हैं।

भरत मुनि ने यह परिभाषा दृश्यकाव्य को ध्यान में रखकर की गई है। रस दृश्यकाव्य अथवा श्रव्य काव्य दोनों में होता है। दोनों को ध्यान में रखकर रस की सीधी परिभाषा यह की जा सकती है कि **'काव्य की पठन श्रवण अथवा दर्शन से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी आनन्द को रस कहते हैं।'** स्थायी भाव वस्तुत: प्रसुप्त अवस्था में रहते है, आस्वादन का अर्थ वस्तुत: उनको जगाना होता है। उन्हें जगाने वाले विभावादि है, उनके जगने का प्रमाण अनुभाव आदि की उत्पत्ति है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि सहृदय के हृदय में स्थित स्थायी भाव ही उचित वातावरण पाकर रस रूप में परिणित हो जाते हैं। भरतमुनि की दृष्टि से सहृदय के हृदय में संवाद से संबद्ध अर्थों का मूल भाव ही रस है। रस उत्पन्न होने के लिए उचित वातावरण की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से होती है। भरत ने अपने प्रसिद्ध सूत्र में भी यही कहा हैं विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से स्थायी भाव रसरूपता को प्राप्त होते हैं।[9] भरत मुनि ने इसको एक दृष्टांत देकर समझाने का प्रयास किया है कि जैसे गुड़ आदि विशेष द्रव्यों और व्यंजनों औषधि आदि निर्मित षाडव-प्रपानक आदि से रस उत्पन्न होते हैं। ठीक उसी प्रकार अनेक भावों के उपगत होने से स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त करते हैं। भरत मुनि ने अपने इस मत को दृढ़ता से पुष्टि के लिए आनुवंश्य (गुरु-शिष्य परम्परा में किसी विषय विशेष के समर्थन के लिए प्रयुक्त किया गया श्लोक/प्रमाण) को उद्धृत किया है- कि अनेक प्रकार के द्रव्यों तथा व्यंजनों से युक्त व्यंजन खाते हुए उसका आस्वादन ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार अनेक भावों तथा अभिनयों से संबंध स्थायी भावों का सहृदय व्यक्ति हृदय में आस्वादन करता है। इसी प्रतीति को रस कहते हैं[10]। पुन: प्रश्न उपस्थापित करते है कि रस से भाव की अभिनिर्वृत्ति होती है? अथवा भावों से रस की अभिनिर्वृत्ति होती है? क्योंकि नर्तक में वर्तमान रस से सामाजिक में भाव उत्पन्न होता है। जैसे रामगत करुण-रस का नट के द्वारा विभावादि द्वारा अभिनीत होने के कारण सामाजिक द्वारा शोक का अनुभव जाता है। इसके अतिरिक्त क्या रस एवं भाव दोनों परस्पर जन्य-जनक है? एक अन्य पक्ष उपस्थित होता है। भरत मुनि के मत में भाव से ही रस निष्पन्न होता है, जैसा कि रस-सूत्र में भी कहा गया है कि 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'। दुष्यन्त/शकुन्तला आदि नायक/नायिका के प्रतीति पश्चात् ही रस का आस्वादन किया जाना सम्भव है। यथा

नानाभिनयसम्बन्धान्भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्योक्तृभि:॥
नानाद्रव्यैर्बहुविधैर्व्यंजनं भाव्यते यथा।
एवं भावा भावयन्ति रसानभिनयै: सह[11]॥

लोक में कोई भी भाव विभाव इत्यादि के द्वारा व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जाता है। अपितु अभिनय के माध्यम द्वारा साक्षात्कार की अवस्था विशेष में विभाव आदि शब्द के कहा जाता है, इसलिए एक दूसरे की परस्पर सिद्धि में उपकारक है। इसका अभिप्राय इनमें परस्पर जन्य-जनक-भाव नहीं है। जैसे कि व्यंजन, औषधि से सुसंस्कृत अन्न एवं उसका कर्ता परस्पर भिन्न होते हुए अपने गुण, कर्म के माध्यम से स्वाद में अभिवर्धन करते है, उसी प्रकार से भाव और रस एक दूसरे को भावित करते है। भाव रस को निष्पादित करते है, तथा रस भाव को भावित उपस्कृत करते है।[12] जब क्रिया में अन्योन्याश्रय होता है तब वह दोषरूप में ग्रहण किया जाता है, परन्तु क्रिया की भेद अवस्था में उक्त दोष नहीं

Scanned with OKEN Scanner

होता है। जैसे पट के अपेक्षा तन्तु पट का कारण है, एवं तन्तु की अपेक्षा पट कार्य है। इस अवस्था में इनका अन्योन्याश्रयत्व नहीं है। पुन: यदि भाव ही रस के उत्पादक है? उस अवस्था में 'न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते' के स्थान पर 'न हि भावादृते' का ही प्रयोग सर्वथा युक्त था। भरत मुनि इसका समाधान इस प्रकार देते है, कि जिस प्रकार वृक्ष के मूल में बीज की स्थिति होती है, उसी प्रकार की भाव से रसात्मक वृक्ष की स्थिति है[13], एवं सुन्दर अभिनय के द्वारा फल के समान भाव का भोग किया जाता है। अत: 'न हि रसादृते' ही सम्यक् है। भरत मुनि के अनुसार मुख्यत: शृंगार, रौद्र, वीर बीभत्स चार ही रस होते है। इन्हीं चार रसों से क्रमश: अन्य चार हास्य, करुण, अद्भुत एवं भयानक रसों ही उत्पत्ति होती है[14]। शृंगार, रौद्र आदि चार उत्पादक रस के रूप में गणित किए जाते है, एवं हास्य, करुण आदि चार रस शृंगार आदि से उत्पन्न होने के कारण उत्पाद्य रस के रूप में कहे जाते है। शृंगार रस का अनुकरण हास्य-रस के रूप में परिणत हो जाता है। रसाभास एवं भावाभास में भी रति स्थायिभाव से रस रूप शृंगार/भाव का ही अनुकरण किया जाता है। तदाभास (रसाभास एवं भावाभास) की अवस्था में वस्तुत: विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी के आभास से रति का आभास (रति अनुकूल नहीं) होने पर चर्वणाभाससार शृंगाराभास रूप कामना मात्र उदित होती है। कामना, इच्छा, अभिलासात्मक मात्र रति स्थायिभाव नहीं होती है, अपितु व्यभिचारिभाव के रूप परिणत हो जाता है। अत: वहाँ स्थायी न होते हुए भी स्थायी का आभास होने लगता है। जैसे रावण का माता सीता के प्रति कामना मात्र होने के कारण रति का आभास भर होता है। वस्तुत: रावण का कथन काम एवं मोह मात्र से सम्बन्धित होने के कारण रति स्थायी नहीं है अपितु रति का आभास मात्र है। इस अवस्था में साक्षात् हास उत्पन्न नहीं होता है, पुनरपि सीता के प्रति रावण की अवस्था एवं उसके प्रकृति विरुद्ध स्वभाव तथा चिन्ता, दैन्य मोह आदि व्यभिचारी, अश्रुपात आदि अनुभाव जनित अनौचित्य प्रवर्तित रति हास के रूप में परिणत होता है। करुण आदि का आभास भी हास रूप में ही परिणत होता है। अनौचित्य प्रवर्तित रति (तदाभास) हास्य विभाव के रूप में ही स्वीकार किया जाता है[15]। इस प्रकार सभी रसों में अनौचित्य प्रवर्तन विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी में ही सम्भव है, अत: इनको तदाभास के रूप में कहा जाता है, और तदाभास का हास्य में ही परिणति होती है। मोक्ष को प्रतिपादित करने में असमर्थ शम शान्ताभास ही है, अत: हास्य का प्रतिपादक प्रहसन रूप है। रौद्र रस का फल वध आदि है, इसलिए उनके विभावकों को अवश्य करुण रस का उपभोग करना होता है। वीर रस का फल अद्भुत है, अपूर्व पराक्रम से नवीन कीर्तिमान स्थापित करना अद्भुत रस ही है। बीभत्स के विभाव आदि का दर्शन भयानक रस को उत्पन्न करता है।

वस्तुतः सहृदय व्यक्तियों या सामाजिकों के हृदय में भाव जन्मजात होते हैं। यह भाव अनुभव, शिक्षा, दर्शन, निरीक्षण आदि के कारण अथवा पूर्वजन्म के संस्कार के कारण वासना रूप में स्थित रहते हैं। सामान्यतः ये समस्त भाव लौकिक या व्यावहारिक जीवन से सर्वथा संबंधित होते हैं। इसे प्राय: सभी अपने जीवन में भी देखते हैं जैसे कि स्वाभाविक रूप से कोई किसी से प्रेम करते हैं। अत्याचार, अनाचार, दुराचार आदि को देख कर क्रोध भी करते हैं। हिंसक जंतु को देखकर भय भी होता है। तथा कठिन कार्य में उत्साहित भी प्रतीत होता है। कभी विकृत वस्तु को देखकर हृदय में जुगुप्सा आदि अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार से समस्त भाव वस्तुतः व्यावहारिक ही होते हैं। सामान्य जीवन में इसका जितना अनुभव करते हैं उतना ही ये समस्त भाव परिपुष्ट होते जाते हैं। उन समस्त वृत्तांतों का हमारे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और वह हमारे हृदय के भीतर अंकित हो जाता है। ये सब स्थायी भाव के रूप में सामाजिक के हृदय में उपस्थित रहते हैं और जब काव्य का अध्ययन अथवा रंगमंच पर नाटक का दर्शन करते हैं, तो वही भाव हमारे हृदय में प्रदर्शित होने लगता है। यह भाव अभिनय के द्वारा जितना सशक्त दिखाया जाता है उतना ही हृदय के अंदर स्थित जो भाव उपयुक्त वातावरण पाकर उद्भूत हो जाते हैं, इन्हीं उद्भूत भावों का आस्वादन ही रस कहलाता है। इससे मात्र आनंद की ही प्राप्ति होती है। इसीलिए यह लौकिक होते हुए भी लोक से सर्वथा भिन्न होता है इसलिए अलौकिक तथा दिव्य है। रस को इन्हीं कारणों से ब्रह्मानंद सहोदर भी कहा जाता है।

सन्दर्भ :

1. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न स विद्या न सा कला।
   नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ नाट्यशास्त्र 1.116
2. नाट्यशास्त्र 1.17
3. अभिनवभारती प्र.भाग.पृ.266

Scanned with OKEN Scanner

4. रसा भावा ह्यभिनया: धर्मी वृत्तिप्रवृत्तय:।
सिद्धि: स्वरास्तथातोद्यं गानं रंगश्च संग्रह:॥ नाट्यशास्त्र 6/10
5. न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते। नाट्यशास्त्र 6/31 वृत्ति
6. नाट्यशास्त्र 6/31 वृत्ति
7. यथा हि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनस: पुरुषा: हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थातिभावानास्वादयन्ति सुमनस: प्रेक्षका: हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति। नाट्यशास्त्र 6/31 वृत्ति
8. नाट्यशास्त्र 6/31 वृत्ति
9. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्ति:। नाट्यशास्त्र 6/31 वृत्ति
10. यथा बहुद्रव्ययुतैर्व्यंजनैर्बहुभिर्युतम्।
आस्वादयन्ति भुंजाना भवतं भक्तविदो जना:॥
भावाभिनयसम्बद्धान्स्थायिभावांस्तथा बुधा:।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसा: स्मृता:॥ नाट्यशास्त्र 6/32-33
11. नाट्यशास्त्र 6/34-35
12. न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जित:।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्॥
व्यंजनौषधिसंयोगो यथान्नं स्वादुतां नयेत्।
एवं भावा रसाश्चैव भावयन्ति परस्परम्॥ नाट्यशास्त्र 6/36-37
13. यथा बीजाद्भवेद्वृक्षो वृक्षात्पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसा: सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिता:॥ नाट्यशास्त्र 6/38
14. शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रस:।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानक:॥
शृंगारान्त्कृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तित:।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म स करुणो रस:॥ नाट्यशास्त्र 6/39
15. अभिनवभारती प्र.भाग.पृ.294

Scanned with OKEN Scanner